International Journal of Humanities and Social Science Research
www.socialsciencejournal.in
ISSN: 2455-2070
Received: 06-01-2024, Accepted: 22-01-2024, Published: 07-02-2024
Volume 10, Issue 1, 2024, Page No. 15-17

औपनिवेशिक भारत में प्रेस और सरकारी प्रतिबंध

डॉ० धीरज कुमार चौधरी[1], ओम प्रभा[2]
[1] एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, ईश्वर शरण महाविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत
[2] शोध छात्रा, इतिहास विभाग, ईश्वर शरण महाविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
ऐतिहासिक अध्ययनों से प्रायः यह तथ्य दृष्टिगोचर होता है कि जब भी सामाजिक शोषण व दमन की प्रक्रिया तीव्र हुई है, उसी अनुपात में उसका प्रतिरोध भी हुआ है। भारत में औपनिवेशिक शासनकाल में राष्ट्रीय आन्दोलन एवं हिन्दी साहित्य का विकास समानान्तर चलने वाली प्रक्रिया थी। साथ ही साथ भारतीय जन मानस में अपने अधिकार एवं सत्व की भावना प्रबल हुई। जनचेतना को उत्तेजित करने में तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं, नाटकों, कहानियां आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। क्योंकि अंग्रेजों को यह भय था कि कहीं प्रेस उसकी शासन करने की स्वार्थपरक नीतियों को उजागर न कर दे और भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना न पनप उठे, इस डर से उन्होंने भारतीय प्रेस एवं साहित्य पर समय–समय पर दमनात्मक प्रतिबन्ध लगाये। यद्यपि इन प्रतिबंधों के बावजूद भारतीय हिन्दी साहित्य ने क्रमशः विकास किया तथा देश भक्ति एवं राष्ट्रीयता की भावना जगाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

मूल शब्दः मिरातुल अखबार, ईस्ट इण्डिया कम्पनी, जलावतनी, संवाद नियंत्रक, सेंसरशिप, बहि शुल्क अधिकारी।

ब्रिटिश शासन का असली चरित्र उस समय की पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों, सामाजिक प्रतिक्रियाओं और टिप्पणियों के माध्यम से उजागर होता है। परिणाम स्वरूप ब्रिटिश शासन ने क्रांतिकारी पुस्तकों के साथ–साथ पत्रिकाओं को भी जब्त कर लिया। सर्वप्रथम राजाराममोहन राय की पुस्तक 'मिरातुल अखबार' राष्ट्रवादी समाज सुधारक ईश्वरचंद विद्यासागर का सोमप्रकाश' कालांतर में बंगाल के वन्देमातरम 'युगान्तर फारवर्ड ब्लाक जैसे पत्रों एवं पुस्तकों को जब्त किया गया। स्वाधीनता आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली पत्रिकाओं में प्रताप, मर्यादा, प्रभा, हंस, चांद, सैनिक आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। वस्तुतः जब कोई लेखक व्यवस्था के खिलाफ जाता है तो उसे प्रतिबन्धन का शिकार होना पड़ता है। ब्रिटिश सरकार ने भी हिन्दी की अनेक पत्रिकाओं को जब्त कर लिया। प्रेस पत्र पत्रिकाओं व साहित्यिक पुस्तकों के प्रति शासन के दमनात्मक व्यवहार के अन्वेषण उपरांत एक बात स्पष्ट है कि कोई भी साम्राज्यवादी सरकार विरोध में उठती आवाज को सहन नहीं कर सकती थी।

भारत में प्रेस–अधिनियम का इतिहास पत्र पत्रिकाओं के प्रकाशन के साथ ही प्रारम्भ होता है। पत्रकारिता के प्रारम्भिक दौर में प्रेस कानून को निर्मित करने में ईस्ट इंडिया कम्पनी की प्रमुख भूमिका रही। प्रारम्भ में प्रेस सम्बंधी कानून के अभाव में पत्र पत्रिकाएँ ईष्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारियों के दया पर निर्भर थीं। समाचार पत्रों को संख्यात्मक दृष्टि के साथ–साथ उनके बढ़ते प्रसार और प्रभाव को नियंत्रित करने के लिए सर्वप्रथम गर्वनर जनरल लार्ड बेलेजली ने मई 13, 1799 के प्रेस अधिनियम को पारित किया। इस अधिनियम के द्वारा समाचार–पत्र के संपादक मुद्रक एवं स्वामी का नाम स्पष्ट रूप से प्रकाशित करना अनिवार्य कर दिया गया था। प्रकाशक को प्रकाशित किये जाने वाले समाचार को पास कराने के लिए सरकारी सचिव को देना पड़ता था। इन नियमों को मांग करने पर तुरन्त जलावतनी (क्मचवतजंजपवद) का दण्ड मिलता था। 1807 में यह अधिनियम पत्रिकाओं, पैम्फलेट तथा पुस्तकों सभी पर लागू कर दिया गया। 1799 के अधिनियम के अनुसार रविवार को पत्र का प्रकाशन नहीं किया जा सकता था। समाचार पत्रों के प्रचार–प्रसार के साथ तथा जनता की समाचारों के प्रति बढ़ती उत्सुकता ने पत्रों की विषयवस्तु आदि को भी प्रभावित किया। सम्पादकीय स्तम्भों तथा अन्य वैविध्यपूर्ण सामग्री के प्रकाशन एवं उनके अध्ययन से नवीन राजनीतिक चेतना का उदय हुआ

भारतीयों की चेतना को दबाने के लिए तत्कालीन गर्वनर जनरलों ने समय–समय पर प्रेस को नियंत्रित करने के लिए कठोर अधिनियम पारित किया। समाचार पत्रों पर प्रतिबंध लगाने के उद्देश्य से 1799 से 1910 तक जो प्रेस अधिनियम पारित किये गये उनका वर्णन इस प्रकार है –लार्ड वैलेजली ने 1799 में सरकारी सेंसर (सवाद नियन्त्रक) की नियुक्ति की जिसका कर्तव्य था प्रकाशनार्थ प्रत्येक वस्तु की जांच करना। फ्रांस के आक्रमण के भय से वेलेजली यह सहन नहीं कर सकता था कि कोई समाचार पत्र ऐसे तथ्य प्रकाशित करें जो उसकी फ्रांस अथवा भारतीय रियासतों के विरुद्ध किसी दुर्बलता को प्रकट कर दे। उसने 1799 में समाचार पत्रों का परिरक्षण अधिनियम पारित कर दिया और समाचार पत्रों पर युद्ध कालीन सेन्सर लागू कर दिया।

1. समाचार पत्र को सम्पादक, मुद्रक और स्वामी का नाम स्पष्ट रूप से छापना पड़ता था।
2. प्रकाशक को प्रकाशित किए जाने वाले सभी तत्वों को सरकार के सचिव के सम्मुख पूर्व परीक्षण के लिए भेजना होता था। इन नियमों को भंग करने पर तुरन्त उद्वासन का दण्ड मिलता था। 1807 में यह अधिनियम पात्रिकाओं, पैम्फलेट तथा पुस्तकों सभी पर लागू किया गया।

1818 ई का नियम–

लार्ड हेस्टिंग्ज (1813–1823) ने इस नियम को कठोरता से लागू नहीं किया और 1818 में प्रेस सेंसरशिप को समाप्त कर दिया परन्तु सामान्य नियम बनाकर उन विषयों की चर्चा पर रोक लगा दी जिनके कारण सरकार के अधिकार एवं जनहित को किसी भी रूप में क्षति पहुंचने की आशंका हो। इससे प्रेस ने जो राहत की सांस ली. उससे पत्रों के विकास को कुछ बल मिला, जैसे 1822 में बाम्बे समाचार को प्रकाशन शुरु हुआ। 1818 के नियम के अनुसार सम्पादकों को निम्न लिखित विषयों पर विचार प्रकट नहीं करने थे।

- कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्ज के कार्य अथवा इंग्लैण्ड के उन अधिकारियों के कार्य जो भारत सरकार से सम्बन्धित हैं।

- वे विषय जो गर्वनर जनरल, उसकी कौसिल के मैबरों सर्वोच्च न्यायालय के न्यायालय के न्यायाधीशों आदि से सम्बंधित हो।
- उन विषयों को न छापना जिनसे स्थानीय लोगों में कोई भय अथवा शंका उत्पन्न हो। इन रोकों ये से यह स्पष्ट है कि लार्ड हेस्टिंग इस तथ्य को अच्छी तरह जानते थे कि यदि पत्रों पर से सम्पूर्ण रूप से सारे नियन्त्रण हटा लिए जाए तो निदेशक मण्डल की स्वीकृत प्राप्त न होगी। उन्होंने अपने मन्तव्यों में यह स्पष्ट कर दिया कि मैं यह चाहता हूं कि प्रशासन में जनमत के प्रति एक जिम्मेदार रुख पैदा हो।"

1823 ई0 का अनुज्ञाप्ति अधिनियम

1823 में ऐडम्ज 1823 1828 (एमहर्सट) ने प्रेस के विरुद्ध फिर दमनात्मक कारवाई शुरु की। इसका राजा राम मोहनराय और उनके राष्ट्रवादी दोस्तों ने विरोध किया, लेकिन सुप्रीम कोर्ट को दी गई उनकी अर्जी नामंजूर हो गई और प्रेस पर प्रतिबंध लगे रहे। यह आदेश दिया गया कि सार्वजनिक संवाद तथा सरकारी कार्रवाईयों की आलोचना से सम्बंधित कोई भी पत्र पुस्तिका या पुस्तक बिना लाईसेंस के प्रकाशित नहीं हो सकती। लाईसेंस प्राप्त करने के लिए एक हलफनामा देना पड़ता था, जिसमें मुद्रक, प्रकाशक और मालिक का नाम देना जरूरी था। इस लाइसेंस को रद्द भी किया जा सकता था और बिना लाईसेन्स प्रकाशन पर 400 रुपये जुर्माना होता था। इस प्रकार सरकार की मर्जी के बगैर पुस्तकों तथा पत्रों के मुद्रण और छापे खाने के उपयोग को सजा के योग्य अपराध करार दिया गया।"

ऐडम्ज के इस आदेश के समर्थन में दिए तर्कों से यह स्पष्ट था कि यह आज्ञा विशेषता उन समाचार पत्रों के विरूद्ध थी जो भारतीय भाषाओं में प्रकाशित अथवा भारतीयों द्वारा प्रकाशित होते थे। राजा राम मोहनराय को मिरात–उल–अखबार पत्रिका को बन्द होना पडा। ऐडम्ज की आशा के पश्चात केवल तीन बंगला और एक फारसी के समाचार पत्र कलकता से छपते रहे। जे बकिहांम को भी इंग्लैण्ड में उदासित कर दिया गया।

भारतीय समाचार पत्रों का स्वतन्त्र होना – 1835 लार्ड विलियम बेंटिक अपने उदार विचारों तथा भारतीयों के साथ न्यायोचित व्यवहार के लिए प्रसिद्ध है। उनके शासन काल में समाचार पत्रों के प्रति उदार उष्टिकोण अपनाया गया। परन्तु 1823 के नियम को रद्द करना चार्ल्स मेटकाफ (835–365) के समय ही सम्भव हुआ था। वह भारतीय समाचर पत्रों का मुक्तिदाता कहलाए। स्पष्टयता सरकारी अफसरों में दो गुट थे। एक गुट यह समझता था, जैसा कि सर टॉमस मुनरो के शब्दों में कहा जा सकता है कि स्वतन्त्र पत्रकारिता और विदेशियों का राज ये दोनों बातें परस्पर विरोधी है और दोनों साथ–2 नहीं चल सकती। दूसरे गुट का मत इतना निराशावादी नहीं था। ऐसे लोगों में सर चार्ल्स ट्रेवलियन थे जो इन्डोफीलस के छद्म नाम से पत्रों में लेख लिखते थे और उनका मत वह होता था कि सरकार के अधिकारियों पर जनमत का प्रभाव लाभदायक होता है। उनका कहना यह था कि प्रतिनिधि मूलक विधानसभा की अनुपस्थिति में इसके अलावा और कोई माध्यम नहीं है जिससे 1857 की अनुज्ञप्ति अधिनियम आपातकालीन स्थिति जो 1857 के विद्रोह के परिणाम स्वरूप हो गई थी से निपटने के लिए लाईसेंसिंग अधिनियम बनाया गया। लाईसेंस के बिना मुदणालय स्थापित नहीं किया जा सकता था। किसी भी समय सरकार इसे रद्द कर सकती थी। किसी भी पुस्तक या पत्र का प्रकाशन बीच में रोका जा सकता था। यह अधिनियम एक वर्ष तक लागू रहा। 1867 का पंजीकरण अधिनियम 1867 का समाचार पत्र तथा पुस्तकों के पंजीकरण अधिनियम संख्या 25 से 1835 के मेटकाफ के अधिनियम को परिवर्तित कर दिया गया। इस अधिनियम का उददेश्य मुद्रकों तथा प्रकाशकों के कार्य को नियन्त्रित करना था। इसके अनुसार यह निश्चित किया गया कि प्रकाशित होने वाले प्रत्येक समाचार पत्र एवं पुस्तकों की प्रतियां सुरक्षित रखी जाए ताकि भविष्य और मुद्रण स्थान का नाम होना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त प्रकाशन के एक मास के भीतर पुस्तक को एक प्रति बिना मूल्य के स्थानीय सरकार को देनी होती थी।"

देशी भाषा समाचार पत्र अधिनियम 1878

1857 के महान विद्रोह की एक देन शासित और शासक जातियों के सम्बन्धों में कटुता थी। फलस्वरूप अंग्रेजी समाचार पत्र सरकार का सदैव समर्थन करते थे। देशी समाचार पत्र 1857 के पश्चात अभूतपूर्व मात्रा में बड़े और वे अधिक मुखर थे तथा सरकार की आलोचना करते थे। भारतीय प्रेस ने 1870 के दशक में मजबूती से पैर जमाना शुरु कर दिया था।' लार्ड लिटन (1876–80) के प्रशासन की तो उन्होंने खुलकर आलोचना की, खासकर 1876–77 के अकाल पीडितों के प्रति ब्रिटिश सरकार के अमानवीय रवैये की तो जबरदस्त आलोचना इन अखबारों पर दमन की कुल्हाड़ी चलाई और 1878 में वर्नाकुलर प्रेस एक्ट लागू किया। यह कानून भाषाई अखबारों पर अंकुश लगाने के लिए बनाया गया था ब्रिटिश सरकार को उनकी ओर से ही बड़ा खतरा महसूस हो रहा था।

1908 का समाचार पर अधिनियम

सरकार के विरूद्ध बढती हुई भावनाओं तथा कटु आलोचना को रोकने तथा राजनीति में उग्र दल के उदय एवं विकास से उत्पन्न स्थिति से निपटने के लिए 1908 में दी न्यूज पेपर्स ऐक्ट पास किया गया।

1910 का भारतीय समाचार पत्र अधिनियम

इसके अधीन जिलाधीश को किसी भी प्रचलित अथवा नए समाचार पत्र के प्रकाशन तथा छापखाने के मालिक से 500 रुपये से 5000 रूपये की जमानत लेने का अधिकार दे दिया था। यह जमानत किसी भी सरकार विरोधी अथवा आपत्तिजनक लेख लिखने पर जब्त हो जाती थी। पंजीकरण के साथ–साथ जमानत रद्द की जा सकती थी। यदि प्रकाशक दोबारा पंजीकरण कराना चाहता है तो उसे इस अधिनियम के अधीन 10,000 रूपये जमानत के रूप में देने पड़ते। परन्तु इसके पश्चात भी यदि समाचार पत्र आपतिजनक सामग्री प्रकाशित करता तो सरकार इसके मुद्रणालय समाचार पत्र या पुस्तक की सभी प्रतियों को जब्त कर सकती थी तथा उसका पंजीकरण भी रद्द कर सकती थी। इसके दो महीने के अन्दर प्रकाशक स्पेशल ट्रिब्यून के पास अपील भेज सकता था। प्रत्येक प्रकाशक को समाचार पत्र की दो प्रतिया बिना मूल्य सरकार को देनी थी। और मुख्य बहि शुल्क अधिकारी को आपतिजनक सामग्री को भी जब्त करने का अधिकार दिया गया था।

अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध लिखने के लिए सबसे प्रसिद्ध मुकदमा तिलक पर चलाया गया। केसरी के कुछ लेखों पर आपति करते हुए तिलक को 6 वर्ष के लिए काला पानी का दण्ड दिया गया। तिलक पर मुकदमा चलाने से सरकार विरोधी अथवा समाचार पत्रों में कमी नहीं हुई बल्कि सरकार के नीयत पर सन्देह अधिक बढ़ा। उपरोक्त प्रेस एक्टों के बाद 1921,1931 ई0 में भारतीय प्रेस आपातकालीन अधिनियम 1932 ई०. विदेश सम्बन्धी अधिनियम 1934 ई0 में भारतीय राज्य सुरक्षा अधिनियम, 1944 ई0 में प्रेस कानून जांच समिति इत्यादि एक्ट पास हुए।"

निष्कर्ष

भारतीय प्रेस के प्रति ब्रिटिश सरकार के दृष्टिकोण तथा समय–समय पर लगाए प्रतिबंधों से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय प्रेस का इतिहास संघर्षो से पूर्ण है। सभी गवर्नर जनरलों

ने प्रेस के प्रति अलग– अलग दृष्टिकोण अपनाये जैसें लार्ड वेलेजली, लार्ड मिंटो, लार्ड एडम, लार्ड कैनिंग तथा लार्ड लिटन भारतीय प्रेस की स्वतन्त्रता के पक्ष में नहीं थे। वे उस पर प्रतिबंध लगाने को सफल भी हुए। लार्ड उल फिस्टन तथा सर टॉमस मुनरो ने इनका समर्थन किया। परन्तु लार्ड हेस्टिंग, चार्ल्स मेटकॉफ, मैकाले तथा लार्ड रिपन स्वतन्त्र प्रेस के समर्थक थे। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि दमनकारी प्रतिबंधों के बावजूद प्रेस भारतवासियों को जागृत करने वास्तविकता को रखने तथा स्वतन्त्रता संग्राम की गरिमा को बनाए रखने में सफल रहा। भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में प्रेस का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा।

सदर्भ सूची

1. प्रेस पब्लिक ओपेनियन एण्ड गर्वमेंट इन इंडिया डॉ० सुशील अग्रवाल– पृ०सं० : 26
2. देसाई ए. आर, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्टभूमि, मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड दरियागंज, नई दिल्ली 1946, पृ०सं०
3. शुक्ल आर.एल, आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2008 पृ०सं० 379
4. जॉन ट्रम्बुल, मांडिसन पेपर, 1 अक्टूबर 1823, राष्ट्रीय अभिलेखागार, दिल्ली।
5. घोष प्रसाद हेमेन्द्र, न्यूजपेपर इन इण्डिया पृ०सं० 25,26
6. चन्द्र, तारा, भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन का इतिहास टवस. 2, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली 1969, पृ०सं० 73
7. सेंसरशिप फ्रीडम ऑफ द प्रेस, प्रेस लॉ, कलकत्ता आई.सी, बॉस, स्टेनहोप प्रेस, राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली पृ०सं० 2,7,9,10
8. प्रो० चन्द्र बिपिन, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1990, पृ०सं० 73
9. न्यूज पेपर, माइक्रोफिल्म, इण्डियन प्रेस बिल 26 फरवरी 1910, पृ०सं० 275, 76, 77
10. ग्रोवर, बी०एल०, मेहता अलका, यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, चन्द्र एण्ड कम्पनी लि०, नई दिल्ली, 2003, पृ०सं० 268, 269